ISSN : 2277-7865
Price : ₹ 50

तित्थयर

वर्ष ३८ अंक ०३ जून २०१४

॥ जैन भवन ॥

KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM

KUSUM®

KUSUM QUALITY PRODUCT

श्रीश्री नेमिनाथाय नमः

"ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी"।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late Sikhar Chand Churoria

MANUFACTURED BY

K. K. FOOD PRODUCTS

A quality product of
Nakeen, Chanachur, Bhujia, Gathia etc.

Partners
Mr. Anil Kumar
Mr. Sunil Kumar Churoria

P.O.- Azimganj, Dist. Murshidabad
Pin- 742122, West Bengal
Mobile: 09734067986/9434060429
Phone No: 03483-253232, Fax No.: 03483-253566
E-mail ID : kusumchanachur@hotmail.com
azimganjsunil@gmail.com

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३८ अंक - ०३ जून २०१४

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com
Website : www.jainbhawan.org

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा
पी-एच.डी., डी.लिट्

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10. Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान	डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी	१४१
२.	अत्तिमब्बे	डॉ. हंपा नागराजय्य	१५१
३.	सोने के कंगन	श्री केवल मुनि	१५९

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : जैन मुनियों की मूर्तियाँ हाथ में ओघा लिए हुए
बौद्धों में ओघा का प्रचलन नहीं है।
(Fei lai feng caves China)

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी

(7) मातंग यक्ष

शास्त्रीय परम्परा :

मातंग जिन सुपार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में मातंग का वाहन गज और दिगंबर परम्परा में सिंह है।

श्वेताम्बर परम्परा-निर्वाणकलिका में चतुर्भुज मातंग को गजारूढ़ तथा दाहिने हाथों में बिल्वफल और पाश एवं बायें में नकुल और अंकुश से युक्त कहा गया है।[1] **आचारदिनकर** में पाश एवं नकुल के स्थान पर क्रमशः नागपाश और वज्र का उल्लेख है।[2] अन्य ग्रन्थों में निर्वाणकलिका के ही आयुध उल्लिखित हैं।[3] मातंग के साथ गजवाहन एवं अंकुश और वज्र का प्रदर्शन हिन्दू देव इन्द्र का प्रभाव हो सकता है।

दिगम्बर परम्परा–प्रतिष्ठासारसंग्रह मे द्विभुज यक्ष के करों में वज्र एवं दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है, पर वाहन का अनुल्लेख है।[4] प्रतिष्ठासारोद्धार में मातंग का वाहन सिंह है और उसकी भुजाओं में

---

1. मातंगयक्षं नीलवर्णं गज वाहनं चतुर्भुजं बिल्वपाशयुक्तदक्षिणपार्णि नकुलकांकुशान्वितवामपार्णि चेति। **निर्वाणकलिका 18.7**
2. नीलोगजेन्द्रगमनश्च चतुर्भुजोपि बिल्वाहिपाशयुतदक्षिणपाणियुग्मः। वज्रांकुशप्रगुणितीकृतवामपाणिर्मातंगराड्.... ....।। आचारदिनकर 34, पृष्ठ 174
3. त्रि.श.पु.च. 3.5.110–11; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट-सुपार्श्वनाथ 18-19; मन्त्राधिराजकल्प 3.32
4. सुपार्श्वनाथदेवस्य यक्षो मातंग संज्ञकः। द्विभुजो वज्रदण्डोसौ कृष्णवर्णः प्रकीर्तितः।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.29

दण्ड और शूल का वर्णन है।[1] **अपराजितपृच्छा** में मातंग का वाहन मेष है और उसकी भुजाओं में गदा और पाश वर्णित है।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा-- दोनों परम्पराओं में मातंग (या वरनंदि) का वाहन सिंह है। श्वेतांबर एवं दिगंबर ग्रन्थों में द्विभुज यक्ष के हाथों में त्रिशूल एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में चतुर्भुज यक्ष के करों में त्रिशूल, दण्ड एवं दो में पद्म के साथ ध्यान किया गया है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है यहाँ भी दक्षिण भारतीय परम्परा उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति परम्परा :

विमलवसही के रंगमण्डप से सटे उत्तरी छज्जें पर एक देवता की अतिभंग में खड़ी षड्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। देवता का वाहन गज है। उसके चार हाथों में वज्र, पाश, अभयमुद्रा एवं जलपात्र हैं तथा शेष दो मुद्राएं व्यक्त करते हैं। देवता की सम्भावित पहचान मातंग से की जा सकती है। मातंग की कोई और स्वतन्त्र मूर्ति नहीं प्राप्त होती है।

विभिन्न क्षेत्रों की सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों (11वीं-12वीं शती ई.) में यक्ष का चित्रण प्राप्त होता है। पर इनमें पारम्परिक यक्ष नहीं निरूपित है। सुपार्श्व से सम्बन्ध करने के उद्देश्य से यक्ष को सामान्यतः सर्पफणों के छत्र से युक्त दिखाया गया है। देवगढ़ के मन्दिर[4] की मूर्ति (11वीं शती ई.) में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त द्विभुज यक्ष के हाथों में पुष्प एवं कलश है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ (ज॰ 935, 11वीं शती ई.) की एक मूर्ति में तीन सर्पफणों के छत्रवाला यक्ष चतुर्भुज है जिसके

---

1. सिंहाधिरोहस्य सदण्डशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य। प्रतिष्ठासारोद्धार 3.135; प्रतिष्ठातिलकम् 7.7, पृ. 333
2. मातंगः स्याद् गदापाशौ द्विभुजो मेषवाहनः। अपराजितपृच्छा 221.47
3. रामचन्द्रन, टी.एन., पू.नि., पृ. 200
4. देवगढ़ की मूर्तियों पर श्वेतांबर परम्परा की महाविद्या रोहिणी का प्रभाव है। गोवाहना रोहिणी महाविद्या की भुजाओं में बाण, अक्षमाला, धनुष एवं शंख प्रदर्शित हैं।

हाथों में अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एवं चक्र प्रदर्शित हैं। कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप की मूर्ति (1157 ई.) में गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं धन का थैला हैं। विमलवसही की देवकुलिका 19 की मूर्ति में भी गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करों में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल प्रदर्शित है।[1]

(7) शान्ता (या काली) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा : शान्ता (या काली) जिन सुपार्श्वनाथ की यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा में चतुर्भुजा शान्ता गजवाहना एवं दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा काली वृषभवाहना है।

श्वेताम्बर परम्परा-निर्वाणकलिका में गजवाहना शान्ता की दक्षिण भुजाओं में वरदमुद्रा और अक्षमाला एवं वाम में शूल और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[2] आचारदिनकर में अक्षमाला के स्थान पर मुक्तामाला[3] एवं देवतामूर्तिप्रकरण में शूल के स्थान पर त्रिशूल[4] के उल्लेख हैं। मन्त्राधिराजकल्प में यक्षी मालिनी एवं ज्वाला नामों से सम्बोधित है। ग्रन्थ के अनुसार गजवाहना यक्षी भयानक दर्शन वाली है और उसक

---

1. कुम्भारिया एवं विमलवसही की उपर्युक्त दोनों ही मूर्तियों की लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर ग्रन्थों में वर्णित मातंग की विशेषताओं से मेल खाती हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों पर इन्हीं लक्षणों वाले यक्ष को सभी जिनों के साथ निरूपित किया गया है और उसकी पहचान सर्वानुभूति से की गई है। ज्ञातव्य है कि कुम्भारिया की सुपार्श्व-मूर्ति में यक्षी अम्बिका ही है।
2. शान्तादेवी सुवर्णवर्णा गजवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां शूलाभययुतवामहस्ता चेति।
   निर्वाणकलिका 18.7; त्रि.श.पु.च. 3.5.112-13; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट-सुपार्श्वनाथ 19-20
3. .....लसन्मुक्तामालां वरदमपि सव्यान्यकरयोः। आचारदिनकर 34, पृ. 176
4. वरदं चाक्षसूत्रं चाभयं तस्मात्त्रिशूलकम्। देवतामूर्तिप्रकरण 7.31

शरीर से ज्वाला निकलती है। यक्षी के हाथों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश एवं अंकुश का वर्णन है।[1]

दिगम्बर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह में वृषभारूढ़ा काली के करों में घण्टा, त्रिशूल, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[2] अन्य ग्रन्थों में त्रिशूल के स्थान पर शूल मिलता है।[3] अपराजितपृच्छा में महिषवाहना काली का अष्टभुज रूप में ध्यान किया गया है। काली के हाथों में त्रिशूल, पाश, अंकुश, धनुष, वाण, चक्र, अभयमुद्रा एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[4] दिगंबर परम्परा की वृषभवाहना यक्षी काली का स्वरूप हिन्दू काली और शिवा से प्रभावित प्रतीत होता है।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा— दिगंबर परम्परा में वृषभवाहना यक्षी के करों में त्रिशूल, घण्टा, अभयमुद्रा एवं कटकमुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेताम्बर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मयूर है। यक्षी की दो भुजाएँ अंजलिमुद्रा में हैं और शेष दो में वरदमुद्रा एवं अक्षयमाला हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में वृषभारूढ़ा यक्षी के हाथों में घण्टा, त्रिशूल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[6] दक्षिण भारतीय दिगंबर परम्परा एवं यक्ष-यक्षी-लक्षण के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान है।

---

1. ज्वालाकरालवदना द्विरदेन्द्रयाना दद्यात् सुखं वरभथो जपमालिकां च।
पाशं शृणि मम च पाणिचतुष्टयेन ज्वालाभिधा च दधती किल मालिनीव।।
मन्त्राधिराजकल्प 3.56.24
2. सितगोवृषभारूढा कालिदेवी चतुर्भुजा।
घण्टात्रिशूलसंयुक्तफलहस्तावरप्रदा ।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.30
3. सिता गोवृषगा घण्टां फलशूलवरावृताम्। प्रतिष्ठासारोद्धार 3.161; प्रतिष्ठातिलकम् 7.7. पृ. 342
4. कृष्णाऽष्टबाहुस्त्रिशूलपाशांकुशधनुःशरा।
चक्रामयवरदाश्च महिषस्था च कालिका ।। अपराजितपृच्छा 221.21
5. राव, टी. ए. गोपीनाथ, एलिमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खं. 1, भाग 2, वाराणसी, 1971 (पु.मु.), पृ. 366
6. रामचन्द्रन, टी.एन., पू.नि., पृ. 200

मूर्ति परम्परा :

यक्षी की दो स्वतंत्र मूर्तियाँ देवगढ़ (मन्दिर 12, 862 ई.) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियों में यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ में सुपार्श्व की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहि (नी) नामवाली है। मयूरवाहन से युक्त यक्षी के करों में व्याख्यानमुद्रा, चामर-पद्म, पुस्तक एवं शंख प्रदर्शित हैं।[1] यक्षी का निरूपण स्पष्टतः सरस्वती से प्रभावित है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी अष्टभुजा है और उसका वाहन सम्भवतः मयूर है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, फलों से भरा पात्र, शूल एवं खड्ग और वाम में खेटक, शंख, मुद्गर एवं शूल प्रदर्शित हैं।[2]

जिन संयुक्त मूर्तियों में भी यक्षी का पारम्परिक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं परिलक्षित होता है। देवगढ़ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की दो सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों में तीन सर्पफणों के छत्रोंवाली द्विभुज यक्षी के हाथों में पुष्प (या पद्म) और कलश प्रदर्शित हैं। कुम्भारिया के महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरों की दो मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है। पर विमलवसही की देवकुलिका 19 की मूर्ति में सुपार्श्व के साथ यक्षी रूप में पद्मावती निरूपित है।[3]

(8) विजय (या श्याम) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा :

विजय (या श्याम) जिन चन्द्रप्रभ का यक्ष है। श्वेताम्बर परम्परा में द्विभुज विजय का वाहन हंस है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुज श्याम का वाहन कपोत है।

श्वेताम्बर परम्परा–निर्वाणकलिका में द्विभुज विजय त्रिनेत्र है

---

1. जि.इ.दे., पृ. 105
2. मित्रा, देवला, पू. नि., पृ. 121
3. तीन सर्पफणों के छत्र वाली यक्षी का वाहन सम्भवतः कुक्कुट-सर्प है और उसके करों में वरदमुद्रा, अंकुश, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं।

और उसका वाहन हंस है। विजय के दाहिने हाथ में चक्र और बायें में मुद्गर है।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[2] पद्मानन्दमहाकाव्य में चक्र के स्थान पर खड्ग का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्भुज श्याम त्रिनेत्र है और उसकी भुजाओं में फल, अक्षमाला, परशु एवं वरदमुद्रा हैं।[3] ग्रन्थ में वाहन का अनुल्लेख है। प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्ष का वाहन कपोत बताया गया है।[4] अपराजितपृच्छा में यक्ष को विजय नाम से सम्बोधित किया गया है और उसके दो हाथों में फल और अक्षमाला के स्थान पर पाश और अभयमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा— दिगंबर परम्परा में हंस पर आरुढ़ यक्ष की एक भुजा से अभयमुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेताम्बर ग्रन्थ में कपोत वाहन से युक्त चतुर्भुज यक्ष के हाथों में कशा, पाश, वरदमुद्रा एवं अंकुश वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में कपोत पर आरूढ़ यक्ष त्रिनेष है और उसके करों में फल, अक्षमाला, परशु एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[6] प्रस्तुत विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा का अनुकरण है।

मूर्ति-परम्परा :

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। जिन-संयुक्त

---

1. विजययक्षं हरितवर्ण त्रिनेत्रं हंसवाहनं द्विभुजं दक्षिणहस्तेचक्रं वामे मुद्गरमिति। निर्वाणकलिका 18.8
2. त्रि.श.पु.च. 3.6.108; मन्त्राधिराजकल्प 3.33; आचारदिनकर 34, पृ. 174; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-चन्द्रप्रभ 17; त्रि.श.पु.च. एवं पद्मानन्दमहाकाव्य में यक्ष के त्रिनेत्र होने का उल्लेख नहीं है।
3. चन्द्रप्रभजिनेन्द्रस्य श्यामो यक्षः त्रिलोचनः।
   फलाक्षसूत्रकं धत्ते परसुं च वरप्रदः ।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.31
4. प्रतिष्ठासारोद्धार 3.136
5. पर्शुपाशाभयवराः कपोते विजयः। अपराजितपृच्छा 221.48
6. रामचन्द्रन, टी.एन., पू.नि., पृ. 201

मूर्तियों (9वीं-शती ई.) में चन्द्रप्रभ का यक्ष सामान्य लक्षणों वाला है।[1] इनमें द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा (या फल) एवं धन के थैले (या फल या कलश या पुष्प) से युक्त है। देवगढ़ के मन्दिर 21 की मूर्ति (11वीं शती ई.) में यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में अभयमुद्रा, गदा, पद्म एवं फल प्रदर्शित है।

(8) भुकुटि (या ज्वालामालिनी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

भृकुटि (या ज्वालामालिनी) जिन चन्द्रप्रभ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा भृकुटि (या ज्वाला) का वाहन वराल (या मराल) है और दिगंबर परम्परा में अष्टभुजा ज्वालामालिनी का वाहन महिष है।

श्वेतांबर परम्परा-निर्वाणकलिका में चतुर्भुजा भृकुटि का वाहन[2] वराह है और उसकी दाहिनी भुजाओं में खड्ग एवं मुद्गर और बायीं में फलक एवं परशु का वर्णन है।[3] अन्य ग्रन्थ आयुधों के सन्दर्भ में एकमत हैं, पर वाहन के सन्दर्भ में उसमें पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। मन्त्राधिराजकल्प में यक्षी की भुजा में फलक के स्थान पर मातुर्लिंग मिलता है।[4] आचारदिनकर एवं प्रवचनसारोद्धार में यक्ष का वाहन बिडाल या वरालक बताया गया है।[5] त्रिषष्टिशलापुरुषचरित्र[6] एवं पद्मानन्दमहाकाव्य[7] में वाहन हंस है। देवतामूर्तिप्रकरण में वाहन सिंह है।[8]

---

1. जिन संयुक्त मूर्तियां देवगढ़, खजुराहों, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे. 881) एवं इलाहाबाद संग्रहालय (295) में हैं।
2. ग्रन्थ के पाद टिप्पणी में उसका पाठान्तर विराल दिया है।
3. भृकुटिदेवी पीतवर्णा वराह (विढ़ाल) वाहनां चतुर्भुजां।
   खड्गमुद्गरान्वितदक्षिणभुजां फलकपरशुयुतवामहस्तां चेति।। निर्वाणकलिका 18.8
4. पीता वराहगमना ह्यसिमुद्गरांका भूयात् कुठारफलभृद् भुकुटिः सुखाय।
   मन्त्राधिराजकल्प 3.57
5. आचारदिनकर 34, पृ. 176; प्रवचनसारोद्धार 8
6. त्रि.श.पु.च. 3.6.109-10
7. पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-चन्द्रप्रभ 18-19
8. देवतामूर्तिप्रकरण 7.33

दिगंबर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह में अष्टभुजा ज्वालिनी का वाहन महिष है और उसके करों में बाण, चक्र, त्रिशूल और पाश का वर्णन है।[1] अन्य करों के आयुधों का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रतिष्ठासारोद्धार में अष्टभुजा ज्वालिनी के हाथों में चक्र, धनुष, पाश, चर्म, त्रिशूल, बाण, मत्स्य एवं खड्ग के प्रदर्शन का निर्देश है।[2] प्रतिष्ठातिलकम् में अष्टभुजा यक्षी के करों में पाश, चर्म एवं त्रिशूल के स्थान पर नागपाश, फलक एवं शूल के प्रदर्शन का उल्लेख है।[3] अपराजितपृच्छा में ज्वालामालिनी चतुर्भुजा है।[4] यक्षी का वाहन वृषभ है और उसके करों में घण्टा, त्रिशूल, फल एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित है। यक्षी का निरूपण ग्यारहवीं महाविद्या महाज्वाला (या ज्वालामालिनी) से प्रभावित है।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा— दिगंबर परम्परा में वृषभवाहना यक्षी अष्टभुजा है। ज्वालामय मुकुट से शोभित यक्षी के दक्षिण करों में त्रिशुल, शर, सर्प एवं अभयमुद्रा, और वाम में वज्र, चाप, सर्प एवं कटकमुद्रा का वर्णन है। श्वेतांबर ग्रन्थों में महिषवाहना यक्षी अष्टभुजा है। अज्ञातनाम एक ग्रन्थ में यक्षी के हाथों में चक्र, मकर, पताका, बाण, धनुष, त्रिशूल, पाश एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में बाण, चक्र, त्रिशूल, वरदमुद्रा (या फल), कार्मुक, पाश, झष एवं खेटक धारण

---

1. ज्वालिनी मलिषारूढ़ा देवी श्वेता भुजाष्ठका।
   काण्डंचक्रंत्रिशूलं च धत्ते पाशं च मू (क) षं।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.32
2. चन्द्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझपासिहस्ताम्। प्रतिष्ठासारोद्धार 3.162
3. चक्रं चापमहीशपाशफलके सर्व्यैश्चतुर्भिः करैरम्यैः।
   शूलभिषुं झपं ज्वलदसिं धत्तेऽत्र या दुर्जया।। प्रतिष्ठातिलकम् 7.8, पृ. 343
4. कृष्णा चतुर्भुजा घण्टा त्रिशूलं च फलं वरम्।
   पद्मासना वृषारूढ़ा कामदा ज्वालमालिनी।। अपराजितपृच्छा 221.22
5. जैन परम्परा में महाविद्या महाज्वाला का वाहन महिष., शूकर, हंस एवं बिडाल बताया गया है। दिगंबर ग्रन्थों में महाविद्या के हाथों में खड्ग, खेटक, बाण और धनुष प्रदर्शित हैं।

करने का उल्लेख है।[1] स्पष्टतः दक्षिण भारत की दोनों परम्पराओं के विवरण उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पद्मावती के बाद कर्नाटक में ज्वालामालिनी ही सर्वाधिक लोकप्रिय थी। ज्वालामालिनी के बाद लोकप्रियता के क्रम में अम्बिका का नाम था।[2]

मूर्ति-परम्परा :

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली है। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर 12, 862ई.) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में चन्द्रप्रभ के साथ **सुमालिनी** नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[3] यक्षी के तीन हाथों में खड्ग, अभयमुद्रा एवं खेटक प्रदर्शित हैं, चौथी भुजा जानु पर स्थित है। वाम पार्श्व में सिंहवाहन उत्कीर्ण है। सुमालिनी का लाक्षणिक स्वरूप निश्चित ही 16वीं महाविद्या महामानसी से प्रभावित है।[4] बारभुजी गुफा की मूर्ति में सिंहवाहना यक्षी द्वादशभुजा है। यक्षी की दाहिनी भुजाओं में वरदमुद्रा, कृपाण, चक्र, बाण, गदा एवं खड्ग और बायी में वरदमुद्रा, खेटक, धनुष, पाश एवं घण्ट प्रदर्शित हैं।[5] सिंहवाहन के अतिरिक्त मूर्ति की अन्य विशेषताएं सामान्यतः दिगंबर ग्रन्थों से मेल खाती हैं।

जिन-संयुक्त मूर्तियां (9वीं-12वीं शती ई.) कौशाम्बी, देवगढ़, खजुराहो, एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं। इनमें अधिकांशतः द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है। यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल (या कलश या पुष्प) प्रदर्शित हैं। देवगढ़ (मन्दिर 20, 21) एवं खजुराहो (मन्दिर 32) की तीन चन्द्रप्रभ मूर्तियों में यक्षी

---

1. रामचन्द्रन, टी. एन., पू.नि., पृ. 201
2. देसाई, पी.बी, जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, शालापुर, 1963, पृ. 172
3. जि.इ.दे, पृ. 107
4. श्वेतांबर परम्परा में सिंहवाहना महामानसी के मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक हैं।
5. मित्रा, देवला, पू.नि., पृ. 131

चतुर्भुजा है। यक्षी के दो हाथों में पद्म एवं पुस्तक, और शेष दो में अभयमुद्रा, कलश एवं फल में से कोई दो प्रदर्शित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन-संयुक्त मूर्तियों में भी यक्षी को पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप में अभिव्यक्ति नहीं मिली।

(9) अजित यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

अजित जिन सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है।

श्वेतांबर परम्परा-निर्वाणकलिका में चतुर्भुज अजित के दक्षिण करों में मातुलिंग एवं अक्षसूत्र और वाम में नकुल एवं शूल का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं। पर मन्त्राधिराजकल्प में अक्षसूत्र के स्थान पर अभयमुद्रा और आचारदिनकर में शूल के स्थान पर अतुल रत्नराशि के प्रदर्शन के निर्देश हैं।[2]

दिगंबर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह में कूर्म पर आरूढ़ अजित के हाथों में फल, अक्षसूत्र, शक्ति एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[3] परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर परम्परा श्वेतांबर परम्परा की अनुगामिनी है। नकुल के स्थान पर वरदमुद्रा का उल्लेख दिगंबर परम्परा की नवीनता है।

(क्रमशः)

---

1. अजितयक्षं श्वेतवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपार्णिं नकुलकुन्तान्वितवामपार्णिं चेति।
   निर्वाणकलिका 18.9, द्रष्टव्य, त्रि.श.पु.च. 3.6.138-39
2. मन्त्राधिराजकल्प 3.33, आचारदिनकर 34, पृ. 174
3. अजितः पुष्पदन्तस्य यक्षः श्वेतश्चतुर्भुजः।
   फलाक्षसूत्रशक्त्याढ्यंवरदः कुर्मवाहनः।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.33
   द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धारः 3.137; प्रतिष्ठातिलकम् 7.9., पृ. 333; अपराजितपृच्छा 221.48

अत्तिमब्बे

डॉ. हंपा नागराजय्य

कर्नाटक के इतिहास में दसवीं शताब्दी, सुवर्णयुग कहलाती है। राजकीय, साहित्य, संस्कृति, कला, धर्म इस प्रकार अनेक क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण घटनाएं इसी समय में घटी हैं। गंग, राष्ट्रकूट, पश्चिम चालुक्यों के दो चक्रवर्ती इसी शताब्दी में विराजमान थे। इम्मड़ि बूतुग, मारसिंह, चावुंडराय ने गंगवंश को प्रज्वलित किया।

मुम्मड़ि कृष्ण ने राष्ट्रकूटों को राष्ट्रीय सम्मान से सुशोभित किया। तैलप और उनके पुत्र सत्याश्रय इरिव बेडंग, दोनों ने पश्चिम चालुक्य साम्राज्य शुरु किया। आप दोनों अखिल भारत में सम्मान के पात्र रहे। राजकीय क्षेत्र में आप सभी एक नई शक्ति के रूप में उभर आए। सारे भारत की दृष्टि कर्नाटक की ओर आकर्षित हुई।

साहित्य क्षेत्र में, दसवीं शताब्दी का अपना ही एक महत्वपूर्ण स्थान है। आदिकवि पंप ने विक्रमार्जुन विजय (पंपभारत), आदिपुराण नाम के दो महाकाव्यों की रचना की। पंप के छोटे भाई **जिनवल्लभ** ने इतिहास प्रसिद्ध **गंगाधरं शिलालेख** लिखवाए। **पोन्न** कवि ने **भुवनैक रामाभ्युदयं** और **शांति पुराणं** नाम के दो श्रेष्ठ चंपूकाव्यों की रचना की। नागवर्मा ने **छंदोंबुधि** और **कर्नाटक कादंबरि** नाम की दो कृतियों की रचना की। इसी परंपरा को समर्थ रूप से आगे बढ़ाते हुए कवि **रन्न** ने **परशुराम चरिते, चक्रेश्वर चरिते, अजित तीर्थंकर पुराण तिलकं, साहस भीम विजयं (दगायुद्ध)** नाम की चार महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की। कन्नड़ साहित्य इन कवियों से, इन कृतियों से समृद्ध हुआ। एक नया आयाम पाया। चावुंडराय का **चावुंडराय पुराण** भी इसी काल

की गद्यकृति होने के कारण, कन्नड गद्य क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

राष्ट्रकूटों के चक्रवर्ती मुम्मडि कृष्ण के मंत्री भरत के आश्रय में महाकवि पुष्पदंत, राजधानी मान्यखेट में रहते थे। मंत्री भरत और उनके पुत्र रन्न के आश्रय में रहकर पुष्पदंत ने प्राकृत भाषा में '**महापुराण**', '**यशोधर चरिते**', '**नागकुमार चरिते**', नाम की महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की।

चावुंडराय के गुरु, नेमिचंद्राचार्य जी जैन सिद्धान्त चक्रवर्ती माने जाते थे। नेमिचन्द्राचार्य जी ने, चाबुंडराय के लिए सम्पूर्ण जैन सिद्धान्त का सार संग्रह करके, **गोम्मटसार** नामक ग्रन्थ की; प्राकृत में **द्रव्य संग्रह** आदि और भी अनेक कृतियों की रचना करके प्राकृत भाषा की अभिव्यक्ति को समृद्ध बनाया है।

शिल्पकला के क्षेत्र में कर्नाटक का विशिष्ट स्थान है, कर्नाटक की देनों में गोम्मटमूर्ति शिल्प श्रेष्ठ है। श्रवणबेलगोल के इन्द्रगिरि पर्वत पर विराजमान बाहुबलि (गोम्मटेश) की मूर्ति–जगत् प्रसिद्ध है। चंद्रगिरि पर स्थित चाबुंडराय जिनमंदिर, वास्तुकला की दृष्टि से प्रसिद्ध है। चाबुंडराय युद्धवीर होते हुए धर्मवीर भी थे। गोम्मटेश विग्रह का निर्माण करवाकर **गोम्मटराय** कहलाए।

दसवीं शताब्दी कर्नाटक के धार्मिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसी समय जैन धर्म अपने अत्युन्नत शिखर पर विराजमान था। गंग और राष्ट्रकूट वंश के राजाओं ने जैन धर्म को अपने राष्ट्रधर्म के रूप में घोषित किया था। उत्तर में कोलार नंदिबेट्ट के दक्षिण में तलकाड़ में इन दोनों के बीच बेंगलूर नेलमंगल के समीप मन्ने (मन्यपुर) में गंग राजाओं ने जिन मंदिरों का निर्माण करवाकर जैनधर्म की प्रभावना की थी। नंदिबेट्ट पर स्थित देवालय गंगवंश के राजाओं का

पट्ट जिनालय था। अण्णिगेरे, कोप्पल पुलिगेरे (लक्ष्मेश्वर) बनवासि, सौदत्त, श्रवणबेलगोल, हलसि, बलिलगावे, लक्कुंड़ि, मुलुगुंद, ऐहोले, पट्टदकल्लु, कोंगलि, बादामि, होंबुज (बोंबुच्चपुर), मान्यखेट, आदि स्थान जैन संस्कृति के केन्द्र थे। प्रजाओं से चक्रवर्ती तक सब जैन थे। इतिहासकार मानते है कि दसवीं शताब्दी में समूचे कर्नाटक भर में राष्ट्रकूट साम्राज्य की प्रजाकोटी में संख्या की दृष्टि से आधा भाग जैनों की संख्या थी। अण्णिगेरि में गंग वंश के पेर्म्माडि इम्माड़ि बूतुगराय द्वारा निर्मित जिनालय बहुत कलात्मक है। वह विशाल जिनालय आज भी सुस्थिति में है और दर्शनीय है।

इन सभी परंपरा और आधारों के साथ और एक महत्वपूर्ण अंश है, वह है इसी दसवीं शताब्दी में जो स्त्री जाग्रति की लहर उठी, वह भी स्मरणीय है। गंगों के राष्ट्रकूटों के सौदत्ति के रट्टटों की रानियाँ, राजकुमारियाँ अपने योगदान के साथ प्रसिद्ध रही हैं। इस काल की राजकुमारियाँ मंत्री और प्रद्यान सेनानियों की पत्नियाँ, पुत्रियाँ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और अधिकारों के कारण से प्रशंसा योग्य हैं। बड़ी रानी, छोटी रानी, सामान्य प्रजा की पत्नी आदि किसी तरह के पक्षपात के बिना कई महिलाओं ने प्रशंसनीय कार्य किये है, अपने अपने देवालय, गुरुमठ, आदि को दान दिया है, तालाबों का निर्माण करवाया है, कुँए निर्माण करवाए हैं, आहार, अभय, भैषज, और शास्त्र दान किए हैं। कई स्त्रियों ने अपने अधिकार में शासन किया है। इन सब विषयों के समर्थन में कई शिलालेख हैं। युद्ध भूमि में पुरुषों से भी अधिक धैर्य से युद्ध किया है। ऐसी महिलाओं की वीर गाथाएँ भी है।

दान चिंतामणि अत्तिमब्बे; इस दसवीं शताब्दी और सम्पूर्ण दो हजार वर्ष के कर्नाटक के इतिहास में अनन्य स्त्री शक्ति के रूप में उभर आई है। उसका अद्वितीय गौरीशंकर सदृश व्यक्तित्व अमर रहा

है। कर्नाटक के सर्व क्षेत्रों में उनका पात्र और प्रभाव है। इतिहासकारों के अनुसार सभी क्षेत्रों में उनकी पहचान है। अत्तिमब्बे अन्यतम व्यक्तित्व की कांति कर्नाटक के इतिहास में प्रज्वलित है।

जैन धर्म कर्नाटक में ई. पू. चौथी शताब्दी से ही विकसित होकर एक प्रभावशाली धर्म के रूप में रहा है। मौर्य और सतवाहन इस धर्म के आधारस्तम्भ थे। उसके बाद कन्नड़ के श्रेष्ठ जैन राजाओं ने शासन किया है। बादामि चालुक्यों ने जैन धर्म को अधिक गौरव के साथ देखा। उनमें कुछ राजा-रानी जैन थे। **पुलिगेरे** उनके वंश के देवता का क्षेत्र था। आदि कदंबो ने जैन धर्म के प्रचार के लिए उदारता से राजाश्रय दिया। कदंब वंश के कई राजा स्वयं जैन थे; उन्होंने जिनमंदिरों का निर्माण भी करवाया था। **हलसि** -(पलाशिका-हलसिगे) कदंबों के कुलदेवता का पुण्यक्षेत्र था। राष्ट्रकूट राजाओं में कई राजा जैन थे, जिन्होंने स्वंतंत्र शासन करनेवाले गंगराजाओं को अपने आधीन किया था। अमोघवर्ष नृपतुंग तो आदर्श जैन श्रावक थे। जैन आगम ग्रन्थों के धवल जयधवल कृतियों की रचना के पोषक होकर-अतिशय धवल कहलाए। श्री विजय महावीराचार्य, शाकटायन, जिनसेन गुणभद्र आदि जैनाचार्यों के कृपापात्र बने रहे। जिनसेनाचार्य जी नृपतुंग के राजगुरु थे। गुणभद्राचार्य जी नृपतुंग के पुत्र इम्मड़ि कृष्ण के गुरु थे। जिनभक्त बंकरस, नृपतुंग के दंड़ाधिपति थे। नृपतुंग ने **प्रश्नोत्तर रत्न मालिका** के बाद जैन–संन्यास की दीक्षा ली।

राष्ट्रकूट साम्राज्य, जिनका शासन कर्नाटक में उन्नत स्थिति में था। उनके भी संकट के दिन आए। नृपतुंग के पौत्र मुम्मड़ि कृष्ण विख्यात चक्रवर्ती थे। तैलपय्य, उनके महासामंत होकर तर्गवाडि से शासन करते थे। कृष्ण की मृत्यु के बाद कोई भी शक्तिशाली नहीं रहा। साम्राज्य के चारों ओर शत्रु तैयार थे। परमार के सीयक हर्ष ने

राष्ट्रकूटों की राजधानी **मान्यखेट** जलाकर लूट ली। रट्टों के कोट्टिग और कर्क भी दुर्बल होकर हार गए। गंगराज मारसिंह ने चतुर्थ इन्द्र को राष्ट्रकूटों के सिंहासनपर बिठाकर रट्टराज्य की पुनःस्थापना की कोशिश की, लेकिन विफल हो गए।

महत्वाकांक्षी तैलप ऐसे संदर्भ की राह देख रहा था। अवसर मिलते ही कार्योन्मुख हुआ। स्वयं राजा घोषित करके राजधानी मान्यखेट को अपने वश में कर लिया। राज्य के चारों ओर जो शत्रु राजा थे उन पर आक्रमण किया। युद्धों में विजयी होकर नए साम्राज्य के संस्थापक बन गए। इस प्रकार दसवीं शताब्दी में एक नया साम्राज्य पश्चिम चालुक्य का उदय हुआ। इस राज वंश का और एक नाम **कल्याणि चालुक्य** भी है। ई. स. 973-74 में तैलप ने इसकी स्थापना की। और वर्षों तक चक्रवर्ती होकर राज्य किया। दो महान जैन वंश-परिवार ही इस तैलप (ई. स. 973-997) के राज्यशासन में –साथी और सहायक थे। उनमें श्रेष्ठ हैं मल्लपय्य, पुन्नमयय, गुंडमय्य, आहवमल्ल, धल्लपय्य, नागदेव, अण्णिगदेव। आप सभी अत्तिमब्बे के परिवार के ही थे।

आज के आंध्रप्रदेश का बेंगी प्रदेश हजारवर्ष से पहले कर्नाटक का था। बेंगी, बेडंगी, बोंगि, बेंगि आदि नामों से यह एक छोटासा प्रसिद्ध देश था। उस समय यह वेंगी प्रदेश जैन धर्म का केन्द्र होकर जिनमंदिरों का श्रेष्ठ स्थान था। इस छोटे से देश के जैन राजा, राजपूजित, राजाश्रितों ने जैन संस्कृति साहित्य कला, इतिहास के प्रचार-प्रसार के लिए अपना योगदान दिया। कन्नड साहित्य के श्रेष्ठ साहित्यकार पंप, पोन्न, नागवर्म आदि वेंगी प्रदेश के ही हैं। पोन्नकवि ने वेंगी प्रदेश का वर्णन इस प्रकार किया है **'वेंगी देश इस त्रिलोक में अतिशय है'**, वहाँ सभी प्रकार के फल, वृक्ष अमूल्य वस्तु संपदा

मिलते हैं। वह भूदेवी के तिलक के समान, मुख कमल के समान नवतारुण्य से, तिरछी नजरों सा होठों के श्रृंगार-सा श्रेष्ठ है-यह बेंगी देश। सिर्फ विद्याधरलोक मात्र इसकी समानता कर सकता है। इस प्रदेश का सुन्दर नगर है **पुंगनूर।**

महाकवि रन्न ने कहा **मिगिलेनिकुं विषयदोलगे वेंगी विषयं।** वेंगी प्रदेश के समान और कोई प्रदेश नहीं है।

जलधितरंग ताड़ित महीतलदोल, नेगलदन्तु बेंगि मं
डलमदरोल् जितान्य विषयं नेगलिदहर्ददु कंमेदेऽशम

ग्गालिकेय कंमेदेऽशमनलंकरि दर्ददु पुंगनूर जग
त्तिलक मदवर्के मुख्यमेने पेंपेसेदिर्ददुदु नागमय्यना।।

(वेंगी मंडल, समुद्र की लहरों से छूए जानेवाले प्रदेश में प्रसिद्ध था। अन्य देशों से भी बढ़कर प्रसिद्ध था, वह कीर्तिशाली कम्मेदेश इस प्रकार प्रसिद्ध कम्मेदेश का अलंकार सा था–**पुंगनूर,।** पृथ्वी के तिलकसा सुन्दर दिखाई देते थे वहाँ **नागमय्य।** नागमय्य की महिमा श्रेष्ठ थी। **नागमय्य-** मयूरों को वर्षा देनेवाले मेघ से थे। सज्जनों की भलाई करते थे। वे जिनभक्त थे। दिग्गजों के सामना करते, मंगल लक्षणों के साथ ख्यात थे।

इस जैन परिवार के ज्येष्ठ नागम्मय्य के कल्पवृक्ष के समान दो पुत्र थे। अग्रसुत का नाम था–मल्लपय्य, इस विद्यानिधि मल्लपय्य के अनुज थे पोन्नमय्य, गुणधर पोन्नमय्य भाई के भक्त थे। कृष्ण-बलराम, राम-लक्ष्मण, भीम-अर्जुन के समान ही आप दोनों भाई राज्य भर में प्रसिद्ध थे। पुराण पुरुषों के समान भ्रातृत्व था। इन चरित्र पुरुषों का सौंदर्य आदर्श और प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण से यही श्रेष्ठ लगने लगा। इन अपूर्व भाईयों का व्यक्ति चित्रण, पोत्र और रन्न ने अपने

काव्यों में बहुत आकर्षक रुप से चित्रित किया है। आज भी इनके पद्य प्रभाव पूर्ण हैं।

राज्यशास्त्र निपुणता, युद्धकुशलता, सदाचार संपन्नता, गंभीर चरित्र, पात्र के अनुसार उदारता, कला साहित्य आदि को अधिक आश्रय देना आदि गुण और व्यक्तित्व से मल्लप-पुत्रमय्य–सभी के प्रिय बन गये थे। पंडित और कवियों को इनका घर मायके सा रहता था। भूत-भविष्यत और वर्तमान को जानने की कुशलता थी। शत्रु कितना भी पराक्रमी क्यों न हो उसे हराने का शौर्य था। इस प्रकार दान देनें और रक्षा करने के श्रेष्ठ गुण इनमें थे।

पिता नागमय्य के काल से ही आपके कुलदेवता-शांतिनाथ तीर्थंकर और कुलगुरु आचार्य जिनचंद्र मुनि थे। जिनचंद्र मुनि के स्वर्गामन के बाद उनके परोक्ष विनय के लिए, इन्होंने पोन्न कवि से शांति पुराण की रचना करवाई, और शास्त्रदान किए। कन्नड साहित्य के लिए इन भाइयों का यह एक श्रेष्ठ योगदान रहा है।

तैलप ने अपने आत्मीय स्वमतीय-मल्लपय्य-और पोन्नमय्य को अपने प्रधान सेनापति के स्थान पर नियुक्ति की थी। और एक महाशूर विवेकी, बृहस्पति धल्लपय्य की नियुक्ति राजसभा में प्रमुख व्यक्ति के रुप में की थी। चालुक्य राज्य के मंत्रि धल्लपय्य-सम्यक्त्व चूड़ामणि जिनभक्त थे। जैनधर्म के यह राजमंत्री, दंडनायक कर्नाटक के एक महासाम्राज्य को संघटित करने में व्यस्त रहे। दो दशकों तक का इनका परिश्रम और त्याग चरितार्थ है।

तैलप-समस्त-भुवनाश्रय-श्री पृथ्वीवल्लभ महाराजधिराज परमेश्वर परमभट्टारक सत्याश्रय कुलतिलक चालुक्याभरण कहलाकर अजर-अमर कीर्ति के पात्र रहे। तैलप को इस कीर्ति शिखर तक पहुँचाने में, धल्लप और मल्लप के परिवारों ने जो त्याग किया है उसका वर्णन

शिलालेखों में चित्रित है। धल्लप-मल्लप के परिवार वालों ने ही तैलप के राज्य की अभिवृद्धि में अपना श्रेष्ठ योगदान दिया है।

धल्लप तैलप के वज्रकोटि के समान थे। धल्लप, चालुक्य राज्य के राजशासन के दस्तावेजों के भंड़ार के अधिकारी थे। धल्लप ही रणरंगाभिमुख वीर भटों के मार्गदर्शक थे। धल्लप एक श्रेष्ठ योद्धा भी थे। साहस समय प्रज्ञा, तर्क आदि कारणों से **धल्लप,** तैलप के श्रेष्ठ साथी थे। कोंकण की सेना यह जानकर पीछे हट गई कि, अगर धल्लप की दृष्टि में जा पड़े तो अपनी हालत हाथियों से कुचली जानेवाली चूड़ियों के समान होगी। वेंगी की सेना चकित हो गई। शत्रु सेना भाग गई। भीषण, अतिरौद्र अद्‌भुत, अतितेजस्वी धल्लप को तैलप ने पूर्ण स्वातंत्र्य दिया। इन दोनों में–तैलप और धल्लप में सिर्फ सिंहासन का भेद था, और सब कुछ समान था।

(क्रमशः)

सोने के कंगन

श्री केवल मुनि

बीभत्स दृश्य देखकर राजा दो कदम पीछे हट गया, चौंक कर बोला–यह क्या किया? देवि! यह क्या कर डाला?

आपकी इच्छित वस्तु ही तो आपको दी है।

–नहीं! नहीं!! मेरा यह आशय नहीं था। तुमने अनर्थ कर डाला। मैं तुम्हें कुरूप नहीं देख सकता। आँखें बिना तुम्हारा मुख कितना भयंकर लग रहा है।

–मैंने अपनी आँखें देकर आपकी आँखें खोलने की चेष्टा की है। राजन्! यदि अब भी आप यह समझ ले कि शरीर से, इस जीवन से भी अधिक मूल्यवान है शील व्रत; तो सौदा महँगा नहीं पड़ा।

रतिसुन्दरी के इस त्यागपूर्ण आचरण का राजा महेन्द्रसिंह पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वह अपना सर पकड़कर बैठ गया। उसके हृदय में घोर मन्थन चल रहा था। वह सोच रहा था— कहाँ इस सुन्दरी का त्यागपूर्ण जीवन और कहाँ मेरी कामान्धता? इसने मुझे पाप से बचाने के लिए अपना जीवन ही सूनाकर दिया, और मैंने अपनी वासना की तृप्ति हेतु सम्पूर्ण नंदीपुर को ही जनशून्य कर दिया। धिक्कार है मुझे कि अनेक रानियों के होते हुए भी मेरी वासना तृप्त नहीं होती। जितनी भोग सामग्री मिलती है, वासना और भी प्रबल से प्रबलतर होती जाती है। धन्य है यह राजकन्या, जो कुरु देश का अधिकार, सुख-साधनों को तृणवत् समझ कर अपने शील पालन में तत्पर है। उसके समक्ष शरीर को जीवन को भी तुच्छ समझती है। बड़ी कठिनाई से दुःखपूर्ण शब्दों में बोला—

–देवि! मैं तुम्हारे उपकार से दब गया। तुमने मुझे पाप से बचा लिया। किन्तु बड़ा कष्ट पाया मेरे लिए। अपना जीवन अन्धकारमय कर लिया तुमने?

– नहीं महाराज! मेरा जीवन शील के प्रकाश से जगमगा रहा है। नेत्रों का प्रकाश तो एक जीवन को ही प्रकाशित करता है और शील की जगमगाहट जन्म-जन्मान्तर तक आत्मा को चमकाती है।

–आज से और अभी से मैं भी शीलव्रत धारण करता हूँ।

राजा के यह वचन और दृढ़ निश्चय सुनकर रतिसुन्दरी प्रसन्न हो गई। गद्‌गद् स्वर में बोली–मेरा प्रयास सफल हुआ। आपने शीलव्रत धारण कर लिया।

रतिसुन्दरी ने उसी समय कायोत्सर्ग धारण किया और शासन देवी से पुकार की–हे देवी! यदि मैंने मन, वचन, काय से शीलव्रत का पालन किया हो, मेरा व्रत खंडित न हुआ हो तो मेरे नेत्र मुझे वापिस मिल जाय।

सती की पुकार ने चमत्कार दिखाया। शासन देवी प्रगट हुई। रतिसुन्दरी के नेत्र शासन देवी के संकेत से उठे और नयन कोटरों में अवस्थित हो गये। बहता हुआ रक्त रुक गया। रति सुन्दरी का मुख पहले जैसा ही हो गया, मानो कुछ हुआ ही न हो। नेत्र ज्योति पूर्ववत हो गई।

राजा महेन्द्रसिंह इस चमत्कार को आँखें फाड़कर देख रहा था। उसके मुख से एक शब्द भी न निकल सका। शासन देवी के चले जाने के बाद जैसे उसे होश आया। रतिसुन्दरी के पाँवों में गिरकर बोला–धन्य हो देवि! तुम्हें और तुम्हारे शील व्रत को। आज से तुम मेरी बहिन हो और मैं तुम्हारा भाई। तुमने गुरु के समान मुझे धर्म का मार्ग दिखाया। तुम्हारा उपकार जीवन भर नहीं भुलूँगा।

उसके बाद जब तक महेन्द्रसिंह और रतिसुन्दरी जीवित रहे दोनों में भाई-बहन का सम्बन्ध रहा।

कुछ दिन बाद महेन्द्रसिंह बहुत सा धन देकर रतिसुन्दरी को नन्दीपुर पहुँचा आया।

इस प्रकार अपने अनुपम त्याग से रतिसुन्दरी ने अपना शील धर्म भी बचाया और महेन्द्रसिंह को भी परस्त्री-गमन से विमुख करके धर्म मार्ग में प्रेरित किया।

बुद्धिसुन्दरी :

चारों सखियों—रतिसुन्दरी, बुद्धिसुन्दरी, ऋद्धिसुन्दरी और गुणसुन्दरी में बुद्धिसुन्दरी मंत्री दत्त की सुपुत्री थी। उसका विवाह सुसीम नगर के मन्त्री सुकीर्ति के साथ हुआ था। सुसीम नगर का राजा जितशत्रु था।

दोनों पति-पत्नी सुकीर्ति और बुद्धिसुन्दरी आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन राजा जितशत्रु रथ पर चढ़कर नगर से टहलने को निकला। नगर की अट्टालिकाओं को देखता हुआ राजा चला जा रहा था। वह प्रफुल्लित था—अपनी नगर की शोभा देखकर। जितने ऊँचे और भव्य प्रसाद है मेरी नगरी में—सोच-सोचकर जितशत्रु का सीना गर्व से फूला जा रहा था। भ्रमण करते करते राजा मंत्री के निवास स्थान पर पहुँचा। कैसा सुन्दर भवन है मेरे मन्त्री का। नाम के समान भवन भी कीर्तिमान था सुकीर्ति का। राजा की आँखों में गर्व चमक रहा था। सेवक को सुसम्पन्न देखकर श्रेष्ठ स्वामी हर्षित होता ही है। राजा की दृष्टि महल पर नीचे से ऊपर को जाने लगी। एकाएक चौंक कर रह गया जितशत्रु! नजर टकरा गई थी बुद्धिसुन्दरी से उसकी।

जितशत्रु विह्वल हो गया। सोचने लगा—क्या पृथ्वी पर चाँद उतर आया अथवा भूमि पर कमल खिल गया। इतना सौन्दर्य! उस

अपना समस्त अन्तःपुर फीका लगने लगा। दृष्टि जम कर रह गई बुद्धिसुन्दरी के सुन्दर मुख मण्डल पर ! एकटक देखता ही रहा राजा की दृष्टि से घबराकर बुद्धिसुन्दरी ने अपना मुँह पीछे कर लिया। वह चली गई—मानों चाँद छिप गया–बादलों की ओट में।

राजा सचेत हुआ। उसकी दृष्टि महल पर से हटी—चल दिया महल की ओर। रास्ते भर निरन्तर सुन्दरी को पाने की युक्तियाँ सोचता रहा। उसके मन में पाप ने प्रवेश कर लिया था। मन्त्री-पत्नी को अपनी बनाने की साध मन में समा गई।

समर्थ और बलवान व्यक्ति अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। स्वामी ने अपने अधिकार का प्रयोग किया और मंत्री पर किसी अपराध का दोष लगाकर बन्दीगृह में डाल दिया। बुद्धिसुन्दरी राजमहल में पहुँचा दी गई।

रात्रि को विषयान्ध राजा जितशत्रु बुद्धिसुन्दरी के पास आया। सुन्दरी उदास मन बैठी थी। उसकी दृष्टि भूमि पर गड़ी हुई थी। आने वाली विपत्ति की दुश्चिंतायें उसके हृदय में लहरों की भाँति डूब-उतरा रही थी। राजा कब भवन में आ गया, उसे मालूम ही न पड़ा। वह तो इसी विचार में लीन थी कि मेरा शील व्रत किस प्रकार बचे? क्या करूँ क्या न करूँ, मेरा शील धर्म खण्डित न हो?

बुद्धिसुन्दरी को उदास और विचारमग्न देखकर जितशत्रु मुस्कराता हुआ बोला—

—सुन्दरी! तुम उदास क्यों बैठी हो? तुम्हारा तो भाग्य चमक उठा है। उन्नति ही की है तुमने। अब तक मन्त्री की पत्नी थी और अब राजा की रानी बनने वाली हो। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए।

—मैं प्रसन्न कैसे हो जाऊँ राजन्! मेरे ही कारण तो पति को बन्दीगृह मिला है और प्रजापालक राजा पाप-कर्म में प्रवृत्त हो रहा है।

परस्त्री सेवन के पाप से संसार में उसकी अपकीर्ति होगी और नरक के दुःख भोगने पड़ेंगे। मेरे इस मल-मूत्र भरे शरीर के कारण ही तो यह सब अनर्थ हो रहा है।

—देवि! मुझे तो तुम्हारे इस सुन्दर शरीर से अधिक प्रिय और कोई वस्तु संसार भर में दिखाई नहीं देती।

—महाराज! इस मनुष्य शरीर का एक ही सदुपयोग है कि उसको पाकर आत्मा धर्माराधन करे। मैंने भी एक व्रत लिया है।

राजा चौका। उसने पूछा—व्रत, कैसा व्रत? कब तक का व्रत? यह तुम मेरी इच्छा पूर्ति में बाधा क्यों डाल रही हो?

—महाराज! यह बाधा नहीं है। आप मुझ पर अभी से विश्वास नहीं कर रहे हैं तो आगे का जीवन कैसे कटेगा? बुद्धि सुन्दरी ने तुनक कर कहा।

जितशत्रु ने सोचा—छोटी सी बात के लिए सुन्दर स्त्री को नाराज करना उचित नहीं है। उसने आश्वासन दिया—

—सुमुखि! तुम अपना व्रत पालो। मैं उसके बाद ही तुम्हारे पास आऊंगा।

जितशत्रु यह कहकर वहाँ से चला गया। बुद्धिसुन्दरी ने शील-व्रत बचाने के लिए एक युक्ति सोच ही ली। उसने अपनी ही हूबहू एक मिट्टी की मूर्ति बनाई और उसके अन्दर अनेक दुर्गन्धित पदार्थ भर दिये। ऊपर वस्त्राभूषणों से मूर्ति सुसज्जित कर दी।

राजा कुछ दिनों बाद महल में आया तो मूर्ति को देखकर प्रसन्न, हुआ बोला—

मुझे नहीं मालूम था कि प्रिये! तुम इतनी बड़ी कलाकार हो। कितनी सुन्दर मूर्ति है? बिल्कुल तुम्हारी जैसी। एक-एक अंग म

लावण्य टपका पड़ रहा है। आत्मा की कमी है बस, अन्यथा तुम में और इसमें अन्तर ही क्या है? शरीर तो दोनों का एक ही सा है?

बुद्धिसुन्दरी ने राजा को उकसाते हुए कहा–महाराज! पारखी बिना कलाकार की कला फीकी है। आपने मेरी कला को सराहा, धन्यवाद! छूइये, देखिए और भली भाँति परख कर इसका मूल्यांकन कीजिए।

–डर लगता है, छूने से इसका सौन्दर्य मैला न हो जाय, अन्यथा इच्छा तो ऐसी होती है कि लिपट जाऊँ इससे।

–महाराज! अपने चित्त को आनन्दित कीजिए। यदि मूर्ति को कुछ हानि भी हुई तो यह दासी दूसरी तैयार कर देगी।

कामान्ध को विवेक कहाँ? मूर्ति के अंग-प्रत्यंगों पर राजा हाथ फेर-फेर कर देखने लगा। उसे बड़ा सुख मिल रहा था। भावावेश में राजा ने मूर्ति के एक अंग को दबा दिया।

मिट्टी की खोखली, दुर्गन्धयुक्त पदार्थों से भरी हुई मूर्ति दबाव को सह न सकी और फूट गई। चारों ओर दुर्गन्धि फैल गई। छिटककर जितशत्रु दूर जा खड़ा हुआ और बोला–छिः! यह क्या?

–यही तो सच्चाई है नारी शरीर की। ऊपर से मढ़ी खाल के भीतर यही दुर्गन्ध तो भरी है।

राजा विचार में पड़ा गया। उसका विवेक जागृत हुआ। विचारने लगा–बुद्धिसुन्दरी सच ही तो कहती है। यह मानव शरीर दुर्गन्धि की खान ही तो है। मैं व्यर्थ ही इसमें आसक्त हो रहा था। पर-स्त्री वास्तव में ही विवेक बुद्धि का नाश कर देती है। इसका त्याग करना ही उचित है। सचेत होकर बोला–देवि! मान गया तुम्हारी बुद्धि को। तुम्हारा नाम बुद्धि सुन्दरी यथार्थ है। तुम सुन्दर बुद्धि की स्वामिनी हो। मुझे खूब प्रतिबोध दिया। आज से मैं परस्त्री का त्याग करता हूँ।

जितशत्रु के निर्णय को सुनकर बुद्धिसुन्दरी प्रसन्न हो गई। बोली–महाराज! आप अपनी प्रतिज्ञा को अविकल रूप से पालन करते रहें, यही विनती है।

—निश्चित रहो देवि! मैं जीवन में कभी भी परस्त्री को पाप नजर से भी नहीं देखूंगा।

महाराज जितशत्रु ने बुद्धिसुन्दरी को मंत्री को वापिस सौंप दिया और अपने अपराध की क्षमा माँगी।

अपने बुद्धिबल से बुद्धिसुन्दरी ने स्वयं अपने शील की रक्षा की और जितशत्रु को भी परस्त्री गमन से विरक्त कर दिया।

ऋद्धिसुन्दरी :

सुमित्र सेठ की पुत्री ऋद्धिसुन्दरी का विवाह ताम्रलिप्ति के सेठ सुधर्म के साथ हुआ था। ऋद्धिसुन्दरी ने भी अपनी सखियों — रतिसुन्दरी, बुद्धिसुन्दरी और गुणसुन्दरी के साथ ही साथ शील व्रत पालन करने का नियम लिया था।

सेठ सुधर्म वास्तविक अर्थ में सुधर्म ही था। वह जिनेन्द्र धर्म का सच्चा अनुयायी था। एक बार सखियों के साथ बैठी हुई ऋद्धिसुन्दरी को छींक आई, तब उसके मुख से निकला— जिनेन्द्राय नमः। सुधर्म उधर से निकल रहा था। उसको विश्वास हो गया कि यह युवती जिनेन्द्रभक्त है। इसी से आकर्षित होकर उसने इसके साथ विवाह किया था। परम भक्त था वह जिनेन्द्र भगवान का। दोनों पति-पत्नी सुख पूर्वक रहने लगे।

एक बार सुधर्म ऋद्धिसुन्दरी के साथ समुद्र मार्ग से जा रहा था किन्तु उनका जहाज बीच में ही अशुभ कर्म के उदय से नष्ट हो गया। उन दोनों का आयुष्य शेष था। टूटे हुए जहाज का एक तख्ता दोनों के हाथ लग गया। लकड़ी का तख्ता मजबूती से पकड़े हुए दोनों समुद्र

की लहरों के सहारे—डूबते-उतराते रहे। कुछ दिन तक जीवन-मरण के बीच झूलते हुए वे एक द्वीप के किनारे जा लगे।

द्वीप अनजान और निर्जन था। दूर-दूर तक घूम कर उन्होंने देख लिया किन्तु जीवित रहने का कोई आधार नहीं मिला। हार-थक कर समुद्रतट पर आ बैठे किसी वाहन की आशा में! कोई जहाज इधर से निकले तो उसके सहारे इस निर्जन द्वीप से निकलें।

दैवयोग से एक वाहन (जहाज) उधर से आ निकला। वाहनपति ने देखा, दो मानव-आकृतियाँ बैठी हैं। उसने जहाज तट से लगाया और इन्हें बिठा लिया।

सुलोचन—यही तो नाम था उस वाहनपति का। ऋद्धि सुन्दरी की सुदरता पर मोहित हो गया वह। नाम के विपरीत ही स्वभाव था उसका। वास्तव में वह सुलोचन नहीं वरन् कुलोचन ही था। उसके पापी मन में पाप की कलुषता समा गई थी। कलुषित हृदय सुलोचन बेसब्री से रात्रि की कालिमा की प्रतीक्षा करने लगा। सूर्य अस्त हो गया। रात्रि का गहन अन्धकार फैल गया। पापी सुलोचन की आँखें चमकने लगीं।

सरल हृदय सुधर्म और ऋद्धिसुन्दरी थके हुए थे। प्रगाढ़ निद्रा में सो गये किन्तु काम-व्यथित सुलोचन को नींद कहाँ? व्यभिचारी और चोर को नींद नहीं आती। मध्यरात्रि के समय उसने सोते हुए सुधर्म को समुद्र के अथाह जल में फेंक दिया। सोचा—इसकी जल-समाधि से मेरी बाधा दूर हो गयी। असहाय, कोमलांगी, सुन्दरी अब क्या विरोध कर सकेगी? अब वह लता की तरह मेरी भुजा रूप वृक्ष का ही आश्रय चाहेगी।

अचानक ऋद्धिसुन्दरी की नीद खुल गई। पास में पति को न देखकर वह शोकमग्न होकर रोने लगी। सुलोचन ने अवसर का लाभ उठाया, बोला—

सुन्दरी! शोक मत करो! यह वाहन भी तुम्हारा है और मैं भी तुम्हारा। तुम स्वयं को इस सब की स्वामिनी समझो। पति के न रहने से तुम्हें किसी तरह का दुःख या अभाव नहीं होगा।

ऋद्धिसुन्दरी उसके मन की पाप इच्छा को जान गई। उसने देखा कि वाहन के नीचे अथाह जल राशि है और ऊपर सुलोचना का आधिपत्य। एक ओर साक्षात मौत है तो दूसरी ओर दुराचार का दैत्य। कठिन परिस्थिति में फँस गई थी। मन ही मन इस समस्या से निपटने का उपाय सोचने लगी।

उसे विचार-मग्न देखकर सुलोचन बोला–देवि! चिन्ता क्यों करती हो? मैं तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी कर दूँगा। मुझ पर विश्वास करो।

ऋद्धिसुन्दरी ने समुद्र के अथाह जल में छलांग लगाने का विचार किया किन्तु दूसरे क्षण ही ध्यान आया—आत्महत्या घोर पाप है। इससे जन्म-जन्मान्तर तक दुःख भोगने पड़ते हैं। वह सोचने लगी कि कुछ ऐसा उपाय करूँ, जिससे न तो शील खंडित हो और न आत्मघात ही करना पड़े। वह धीमे से बोली—

सुलोचन! अब तुम पर ही तो मुझे विश्वास है। तुम्हारे सहारे ही तो मैं किनारे पर पहुँच पाऊँगी। जब यह नैया किनारे लग जायगी तब भविष्य के सम्बन्ध में तुमसे सलाह करूँगी। तुम उतावलापन क्यों करते हो?

ऋद्धिसुन्दरी के इन शब्दों से वह आश्वस्त हो गया। उसे विश्वास हो गया कि मेरी पापेच्छा पूरी हो जायगी। प्रसन्न मुख बोला--जैसी तुम्हारी इच्छा।

मेरे मन कछु और है कर्त्ता के कछु और! सुलोचन की प्रसन्नता अधिक समय तक न टिक सकी। समुद्र ने उसकी आशाओं पर पानी फेर दिया। जोर का तूफान आया। लाख कोशिश करने पर भी जहाज

बच न सका। उत्ताल तरंगों ने उसे गेंद की भाँति उछाल दिया। आकाश में उछलकर जहाज लहरों पर गिरा। बेचारा छोटा सा लकड़ी का जहाज कहाँ टिक पाता सागर की बलशाली भुजाओं के समक्ष। टुकड़े-टुकड़े हो गया वह।

सबको अपने-अपने प्राण बचाने का पड़ी। जिसको जो आधार मिला उसी के सहारे वह अपनी जान बचाने लगा। ऋद्धिसुन्दरी को भी एक तख्ता मिल गया। एक बार फिर मौत और जिन्दगी की बाजी लग गई। समुद्र की लहरें उसे मौत की नींद सुलाने को आतुर थी और एक छोटा सा लकड़ी का टुकड़ा उसे जीवन की ओर ले जा रहा था। पहले तो उसे पति सुधर्म का भी सहारा था किन्तु अब तो केवल उसके रोम-रोम में बसे धर्म का ही। उसी के आधार पर मृत्यु से जूझने लगी।

धर्म का सहारा लिये वह सागर की विकराल छाती पर तैरती हुई उसी द्वीप के किनारे जा लगी, जहाँ उसका पति सुधर्म पहुँचा था। पति ने पत्नी को देखा और पत्नी ने पति को। बिछड़े हुए साजन मिल गये। हृदय-कमल प्रफुल्लित हो गये। तट निवासी किसी ठाकुर ने उन्हें आश्रय दे दिया।

सुलोचन भी भटकता-भटकता उसी द्वीप में आ पहुँचा। वह बहुत दुःखी और निराश था। सती पर कुदृष्टि डालने का फल उसे बहुत भयंकर मिला। ऋद्धिसुन्दरी ने अपने अपकारी को देखा; परन्तु आपत्ति में फँसे अपकारी को भी उसने दयावश आश्रय दे दिया।

ऋद्धिसुन्दरी के इस उपकार और सद्प्रवृत्ति ने सुलोचन के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। उसके हृदय में पश्चात्ताप का गहरा भाव जागृत हुआ। अपने को धिक्कारते हुए उसने भी ऋद्धिसुन्दरी के समक्ष परस्त्रीगमन से विरक्त होने का दृढ़ संकल्प ले लिया।

(क्रमशः)

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   Vol - 1 (satakas 1- 2) Price : Rs. 150.00
   Vol - 2 (satakas 3- 6) 150.00
   Vol - 3 (satakas 7- 8) 150.00
   Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 50.00
   ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda
   Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee-
   Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee
   Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee
   Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN: 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	200.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	50.00

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskritir ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00
8.	Dr. Abhijit Bhattacharyya-Aatmajayi	Price : Rs.	30.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

जैन जर्नल त्रैमासिक पत्रिका (अंग्रेजी)	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
तित्थयर मासिक पत्रिका (हिन्दी)	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
श्रमण मासिक पत्रिका (बंगला)	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Change yourself and change your world

Shree Jin Chandra Suriji Maharaj
Founder of **SATYA SADHNA**

SITAL GROUP OF COMPANIES

Deals in :-

- ☐ Financial Services.
- ☐ Construction of Commercial & Residential Buildings.

BIKASH SINGH CHHAJER
"Centre Point" 21, Hemanta Basu Sarani
2nd Floor, Room No.-226, Kolkata-700001
Phone: (033) 22429265/22109228
Fax: (91-33) 22429265. Mobile: 9831022577
email: sitalgroupofcompanies@yahoo.co.in